International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

हरिश राणा बनाम भारत संघ : इच्छा मृत्यु पर सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रो० (डॉ०) अशोक कुमार सोनकर,[1], दीपक[2]

[1]विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय
[2]शोधार्थी, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय

सारांश

हरिश राणा बनाम भारत संघ का मामला भारत में निष्क्रिय इच्छामृत्यु और मानव गरिमा के अधिकार से जुड़ा एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील निर्णय है। यह मामला एक ऐसे व्यक्ति से संबंधित है जो लगभग तेरह वर्षों से स्थायी अचेत अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहा था। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या केवल कृत्रिम जीवन–रक्षक साधनों के माध्यम से जीवन को बनाए रखना उचित है या नहीं ? सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जीवन का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत केवल जीवित रहने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें गरिमापूर्ण जीवन और गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार भी शामिल है। न्यायालय ने वर्ष 2018 के **कॉमन कॉज** मामले का उल्लेख करते हुए कहा कि गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार अब संवैधानिक अधिकार का हिस्सा है। साथ ही **अरुणा शानबाग** मामले के सिद्धांतों को भी आधार बनाया गया। जिसमें पहली बार निष्क्रिय इच्छामृत्यु को सीमित परिस्थितियों में मान्यता दी गई थी। न्यायालय ने यह भी माना कि चिकित्सा पोषण सम्बन्धी प्रक्रियाएँ भी चिकित्सकीय उपचार हैं। जिन्हें परिस्थितियों के अनुसार रोका जा सकता है। निर्णय का मुख्य आधार **"रोगी के सर्वोत्तम हित"** का सिद्धांत रहा। जिसमें रोगी की शारीरिक स्थिति, मानसिक पीड़ा, जीवन की गुणवत्ता और सुधार की संभावना का समग्र मूल्यांकन किया गया। दो स्तरीय चिकित्सा समिति की रिपोर्ट में यह स्पष्ट हुआ कि रोगी के ठीक होने की संभावना नगण्य है। अतः उपचार केवल उसकी स्थिति को लंबा कर रहा है। अंततः न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि उपचार रोकने का निर्णय केवल कानूनी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह करुणा, संवेदना और मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। यह निर्णय भारत में इच्छा मृत्यु और मानव गरिमा की संवैधानिक व्याख्या को एक नई दिशा प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : इच्छा मृत्यु, गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार, अनुच्छेद 21, सर्वोच्च न्यायालय।

1. प्रस्तावना :

इच्छा मृत्यु आज के समय में एक अत्यंत संवेदनशील, जटिल और विवादास्पद विषय बन चुका है। यह विषय केवल कानून तक सीमित नहीं है, बल्कि मानवाधिकार, नैतिकता, चिकित्सा और मानवीय गरिमा से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। जब कोई व्यक्ति असाध्य बीमारी, असहनीय पीड़ा या लंबे समय तक अचेत अवस्था में जीवन व्यतीत करता है, तब यह प्रश्न उठता है कि क्या उसे गरिमा के साथ मृत्यु चुनने का अधिकार होना चाहिए। इसी प्रश्न ने भारत सहित पूरे विश्व में इच्छा मृत्यु पर व्यापक बहस को जन्म दिया है। भारतीय संविधान प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। संविधान का अनुच्छेद 21 कहता है कि किसी भी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। समय के साथ सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्यापक व्याख्या की और इसमें गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार को भी शामिल किया। बाद में न्यायालय ने यह माना कि जब गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार है, तब कुछ विशेष परिस्थितियों में गरिमापूर्ण मृत्यु

का अधिकार भी उससे जुड़ा हो सकता है। भारत की 241वीं विधि आयोग रिपोर्ट ने आगे यह स्पष्ट किया कि एक सक्षम रोगी द्वारा जीवन–रक्षक उपचार अस्वीकार करना कानूनी रूप से वैध है और ऐसी इच्छाओं का पालन करने वाले डॉक्टरों पर दुष्प्रेरण या दोषपूर्ण हत्या का आरोप नहीं लगाया जा सकता। ज्ञान कौर मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत "जीवन का अधिकार" मिलता है, लेकिन इसका अर्थ "मृत्यु का अधिकार" नहीं है। न्यायालय ने आत्महत्या को वैध अधिकार मानने से इंकार किया। इच्छा मृत्यु का संबंध मानवाधिकारों से भी है। प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान, स्वायत्तता और पीड़ा से मुक्ति का अधिकार प्राप्त है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज मानव गरिमा की रक्षा पर बल देते हैं। गंभीर बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को अनावश्यक कष्ट से बचाना भी मानवीय दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। इसी कारण कई देशों में इच्छा मृत्यु या उपचार समाप्त करने संबंधी कानून बनाए गए हैं। भारत में इच्छा मृत्यु को लेकर न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इस विषय पर पहला बड़ा मामला अरुणा शानबाग का था। अरुणा शानबाग एक नर्स थीं, जो वर्ष 1973 में हुए एक क्रूर हमले के बाद लगभग बयालीस वर्षों तक अचेत अवस्था में रहीं। वर्ष 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने उनके मामले में पहली बार निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को कुछ शर्तों के साथ अनुमति दी। यह निर्णय भारत में इच्छा मृत्यु संबंधी कानून के विकास की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम माना गया। इसके बाद वर्ष 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने "कॉमन कॉज बनाम भारत संघ" मामले में जीवित इच्छा–पत्र को मान्यता दी। न्यायालय ने कहा कि किसी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह पहले से यह तय कर सके कि गंभीर और असाध्य स्थिति में उसे कृत्रिम जीवन–रक्षक साधनों पर जीवित रखा जाए या नहीं। इस निर्णय ने "गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार" को अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्वीकार किया। हाल के वर्षों में भंतपी त्ंदं हरिश राणा बनाम भारत संघ का मामला इच्छा मृत्यु पर एक नया और महत्वपूर्ण पड़ाव बनकर सामने आया। हरिश राणा लगभग तेरह वर्षों तक अचेत अवस्था में रहे। चिकित्सकीय रिपोर्टों में उनके स्वस्थ होने की संभावना अत्यंत कम बताई गई। परिवार तथा चिकित्सकों की राय के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने कृत्रिम जीवन–रक्षक साधनों को हटाने की अनुमति प्रदान की। इस निर्णय ने यह स्पष्ट किया कि मानवीय गरिमा और संवेदनशील न्याय को ध्यान में रखते हुए न्यायालय विशेष परिस्थितियों में इच्छा मृत्यु की अनुमति दे सकता है। इच्छा मृत्यु का विषय आज भी समाज में मतभेद का कारण बना हुआ है। कुछ लोग इसे मानवीय करुणा और व्यक्ति की स्वतंत्रता से जोड़ते हैं, जबकि कुछ लोग इसे जीवन के अधिकार के विरुद्ध मानते हैं। इसके दुरुपयोग की संभावना, चिकित्सकीय नैतिकता और पारिवारिक दबाव जैसे प्रश्न भी इस विषय को और अधिक जटिल बनाते हैं। फिर भी, यह स्पष्ट है कि आधुनिक समाज में केवल जीवन की अवधि ही नहीं, बल्कि उसकी गुणवत्ता और गरिमा भी महत्वपूर्ण मानी जा रही है। प्रस्तुत अध्ययन में हरिश राणा बनाम भारत संघ मामले के माध्यम से इच्छा मृत्यु की संवैधानिक स्थिति, मानवाधिकार संबंधी पहलुओं, न्यायिक दृष्टिकोण तथा भारतीय विधिक व्यवस्था का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, इस विषय से जुड़े नैतिक, सामाजिक और चिकित्सकीय प्रश्नों पर भी चर्चा की जाएगी।

2. इच्छा मृत्यु : अर्थ एवं उत्पत्ति

इच्छा मृत्यु का अर्थ ऐसे व्यक्ति की मृत्यु से है, जो असाध्य बीमारी, असहनीय पीड़ा अथवा अचेत अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहा हो और जिसकी स्वस्थ होने की संभावना अत्यंत कम हो। ऐसी स्थिति में चिकित्सकीय सहायता अथवा कृत्रिम जीवन–रक्षक साधनों को हटाकर उसकी पीड़ा समाप्त की जाती है। इच्छा मृत्यु का उद्देश्य किसी व्यक्ति को अनावश्यक कष्ट से मुक्ति दिलाना तथा उसे गरिमापूर्ण मृत्यु प्रदान करना माना जाता है। **" Euthanasia (इच्छामृत्यु)"** शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के "Eu=अच्छी," तथा " Thanatos= मृत्यु" शब्दों से मानी जाती है। इस प्रकार इच्छा मृत्यु का शाब्दिक अर्थ "अच्छी मृत्यु" अथवा "शांतिपूर्ण मृत्यु" माना जाता है। वैश्विक स्तर पर इच्छा मृत्यु पर चर्चा प्राचीन काल से होती रही है। यूनानी दार्शनिकों ने असहनीय पीड़ा से मुक्ति को मानवीय दृष्टिकोण से देखा

था।[1] आधुनिक समय में बीसवीं शताब्दी के दौरान चिकित्सा विज्ञान के विकास के साथ यह विषय अधिक महत्वपूर्ण बन गया।

यूथेनेशिया (इच्छामृत्यु) एक ऐसा कार्य या प्रथा है जिसमें किसी ऐसे व्यक्ति के जीवन को बिना किसी दर्द के समाप्त कर दिया जाता है, जो किसी गंभीर और लाइलाज बीमारी या शरीर की ऐसी अक्षमता से पीड़ित हो जिसके कारण वह सामान्य जीवन न जी पा रहा हो; या फिर उसका इलाज रोककर अथवा कृत्रिम जीवन–रक्षक उपकरणों को हटाकर उसे मरने दिया जाता है। यूथेनेशिया का गहरा संबंध चिकित्सक–सहायता प्राप्त आत्महत्या से है और इन दोनों के बीच मुख्य अंतर यह है कि जानलेवा दवा कौन देता है।[2]

जीवन–रक्षक उपकरणों के प्रयोग से रोगियों को लंबे समय तक जीवित रखना संभव हुआ, जिसके कारण गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार पर अंतरराष्ट्रीय बहस प्रारंभ हुई। विश्व स्तर पर इच्छा मृत्यु को लेकर पहली बड़ी कानूनी मान्यता नीदरलैंड में वर्ष 2002 में दी गई। जहाँ "जीवन समाप्ति तथा चिकित्सकीय सहायता अधिनियम" लागू किया गया।[3] इसके बाद बेल्जियम, कनाडा तथा अन्य देशों ने भी सीमित परिस्थितियों में इच्छा मृत्यु को वैधानिक मान्यता प्रदान की। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दस्तावेजों में भी मानवीय गरिमा तथा पीड़ा से मुक्ति को महत्व दिया गया है। वर्ष 1948 की मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 1 और 3 में मानव गरिमा, जीवन तथा स्वतंत्रता के अधिकार को स्वीकार किया गया है।

3. इच्छा मृत्यु के प्रकार :

इच्छा मृत्यु एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें असाध्य रोग, असहनीय पीड़ा अथवा लंबे समय तक अचेत अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहे व्यक्ति की पीड़ा समाप्त करने के उद्देश्य से मृत्यु होने दी जाती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के विकास के साथ यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया है। इच्छा मृत्यु के विभिन्न प्रकार माने गए हैं, जिनकी प्रकृति, प्रक्रिया तथा कानूनी स्थिति अलग–अलग होती है।

इसे मुख्य रूप से दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है अर्थात सक्रिय इच्छामृत्यु (एक जानबूझकर किया गया कार्य, जैसे– मृत्यु लाने के लिये घातक इंजेक्शन) और निष्क्रिय इच्छामृत्यु (जीवन–रक्षक चिकित्सा उपचार को रोकना या वापस लेना, जिससे प्राकृतिक मृत्यु होने दी जाती है)। इसे आगे सहमति के आधार पर विभाजित किया जाता है।

1. सक्रिय इच्छा मृत्यु

सक्रिय इच्छा मृत्यु में चिकित्सक किसी रोगी को ऐसी दवा या इंजेक्शन देता है, जिससे उसकी मृत्यु सीधे रूप से हो जाती है। इसका उद्देश्य रोगी की असहनीय पीड़ा को समाप्त करना होता है। उदाहरण के रूप में यदि कोई व्यक्ति अंतिम अवस्था के कैंसर से पीड़ित हो और अत्यधिक दर्द में हो, तथा चिकित्सक उसे मृत्युकारक दवा देकर उसकी जीवन–लीला समाप्त कर दे, तो यह सक्रिय इच्छा मृत्यु कहलाती है। भारत में सक्रिय इच्छा मृत्यु अवैध मानी जाती है। भारतीय न्याय संहिता, 2023[4] की धारा 105 तथा धारा 108 के अंतर्गत किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करना अपराध माना गया है। हालांकि कुछ देशों, जैसे–नीदरलैंड और बेल्जियम, में कठोर शर्तों के साथ इसे वैधानिक मान्यता प्राप्त है।

2. निष्क्रिय इच्छा मृत्यु

निष्क्रिय इच्छा मृत्यु में रोगी को जीवित रखने वाले कृत्रिम साधन, जैसे वेंटिलेटर, ऑक्सीजन या कृत्रिम दवाओं को हटा दिया जाता है। इसमें रोगी की मृत्यु प्राकृतिक रूप से होने दी जाती है। उदाहरण के रूप में यदि कोई व्यक्ति कई वर्षों से अचेत अवस्था में हो और चिकित्सकीय रूप से उसके स्वस्थ होने की संभावना समाप्त हो चुकी हो, तब

[1] थॉम्पसन, "द लॉज एंड एक्टिव यूथिनिसियाः व्होज लाइफ ईट इज एनीवे?"(फरवरी 1995) 2 (3) *जर्नल ऑफ लॉ एंड मेडिसिन* 233–246, पृष्ठ 233।

[2] यूथेनेशिया (इच्छामृत्यु), उपलब्ध हैः https://www.britannica.com/topic/euthanasia दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[3] नीदरलैंड जीवन समाप्ति तथा चिकित्सकीय सहायता अधिनियम, 2002।

[4] भारतीय न्याय संहिता, 2023 (2023 का अधिनियम संख्यांक 45)।

न्यायालय की अनुमति से जीवन–रक्षक साधन हटाए जा सकते हैं। भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने अरुणा शानबाग मामले, 2011 तथा "कॉमन कॉज बनाम भारत संघ", 2018 में निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को सीमित रूप में मान्यता प्रदान की।

3. स्वैच्छिक इच्छा मृत्यु

जब कोई रोगी स्वयं अपनी इच्छा से मृत्यु की अनुमति मांगता है, तब उसे स्वैच्छिक इच्छा मृत्यु कहा जाता है। इसमें रोगी मानसिक रूप से निर्णय लेने में सक्षम होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति अपनी पीड़ा से मुक्ति के लिए लिखित रूप में इच्छा मृत्यु की मांग करे, तो यह स्वैच्छिक इच्छा मृत्यु मानी जाएगी। कई देशों में "जीवित इच्छा–पत्र" के माध्यम से इस प्रकार की व्यवस्था को मान्यता दी गई है। भारत में भी सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2018 में जीवित इच्छा–पत्र को स्वीकार किया।

4. अस्वैच्छिक इच्छा मृत्यु

जब रोगी अपनी इच्छा व्यक्त करने की स्थिति में नहीं होता, जैसे कोमा या अचेत अवस्था में, और उसके परिवार या चिकित्सक उसके संबंध में निर्णय लेते हैं, तब इसे अस्वैच्छिक इच्छा मृत्यु कहा जाता है। हरिश राणा का मामला इसका उदाहरण माना जा सकता है, जहाँ रोगी लंबे समय तक अचेत अवस्था में था और परिवार तथा चिकित्सकीय राय के आधार पर न्यायालय से अनुमति मांगी गई।

5. अनैच्छिक इच्छा मृत्यु

जब किसी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उसकी मृत्यु कराई जाती है, तब उसे अनैच्छिक इच्छा मृत्यु कहा जाता है। यह अधिकांश देशों में अपराध माना जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई रोगी जीवित रहना चाहता हो, लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी मृत्यु कर दी जाए, तो यह हत्या की श्रेणी में आएगा। भारतीय कानून में ऐसी स्थिति को दंडनीय अपराध माना गया है। भारतीय न्याय संहिता, 2023 के अंतर्गत यह हत्या अथवा आपराधिक मानव वध की श्रेणी में आ सकता है।

6. चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु

इस प्रकार में चिकित्सक रोगी को ऐसी दवा उपलब्ध कराता है, जिससे वह स्वयं अपनी मृत्यु कर सके। इसमें अंतिम कार्य रोगी स्वयं करता है। स्विट्जरलैंड तथा कनाडा जैसे देशों में सीमित परिस्थितियों में इस प्रकार की व्यवस्था को वैध माना गया है। इस प्रकार इच्छा मृत्यु के विभिन्न प्रकारों की प्रकृति अलग–अलग है। वर्तमान में भारत में केवल निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को सीमित रूप में न्यायिक मान्यता प्राप्त है, जबकि सक्रिय इच्छा मृत्यु अब भी अवैध मानी जाती है।

4. अक्रिय इच्छामृत्यु की विधिक प्रक्रिया

भारत में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशा–निर्देशों के आधार पर संचालित होती है। वर्ष 2018 में "कॉमन कॉज"[5] मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार, जिसे वर्ष 2023 में और अधिक स्पष्ट तथा संशोधित किया गया। इस प्रक्रिया को दो चरणों वाली चिकित्सकीय समीक्षा प्रणाली के रूप में निर्धारित किया गया है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी भी रोगी के जीवन–रक्षक उपचार को हटाने का निर्णय पूर्ण रूप से सावधानी, पारदर्शिता और चिकित्सकीय पुष्टि के आधार पर लिया जाए।

प्रथम चरण में प्राथमिक चिकित्सा बोर्ड का गठन किया जाता है। यह बोर्ड संबंधित अस्पताल द्वारा बनाया जाता है। इसमें रोगी का उपचार कर रहा मुख्य चिकित्सक तथा कम से कम पाँच वर्ष के अनुभव वाले दो स्वतंत्र चिकित्सक शामिल होते हैं। पूर्व में यह अनुभव सीमा अधिक थी। जिसे बाद में कम कर दिया गया ताकि प्रक्रिया अधिक व्यावहारिक हो सके। यह बोर्ड रोगी की संपूर्ण चिकित्सकीय स्थिति, बीमारी की गंभीरता तथा सुधार की संभावना का विस्तृत मूल्यांकन करता है।

[5] कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (2018) 5 एससीसी 1 ।

द्वितीय चरण में द्वितीयक चिकित्सा बोर्ड का गठन किया जाता है। इसमें तीन स्वतंत्र चिकित्सक शामिल होते हैं, जिन्हें जिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा तैयार किए गए पैनल से चुना जाता है। यह बोर्ड प्राथमिक चिकित्सा बोर्ड द्वारा दिए गए निर्णय की स्वतंत्र रूप से समीक्षा करता है और यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय निष्पक्ष और चिकित्सकीय रूप से उचित है।

दोनों बोर्डों को यथासंभव 48 घंटे के भीतर अपनी राय देनी होती है, जिससे प्रक्रिया में अनावश्यक देरी न हो। यदि दोनों बोर्ड उपचार वापस लेने की अनुमति देते हैं, तो रोगी के परिवार या अभिभावक की सहमति लेना आवश्यक होता है। इसके साथ ही इस निर्णय की सूचना प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट को देना भी अनिवार्य है, ताकि प्रक्रिया पर विधिक निगरानी बनी रहे और किसी प्रकार के दुरुपयोग की संभावना न रहे।

अंतरराष्ट्रीय स्तर

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इच्छा मृत्यु का विषय मानवाधिकार, मानवीय गरिमा तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से जुड़ा हुआ माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 1948 में स्वीकार की गई "मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा" के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र तथा गरिमा और अधिकारों में समान हैं। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 3 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार प्रदान करता है।[6] यद्यपि इस घोषणा में इच्छा मृत्यु का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, फिर भी मानवीय गरिमा की रक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इसके बाद वर्ष 1966 में "नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय अनुबंध" को स्वीकार किया गया। इसके अनुच्छेद 6 में जीवन के अधिकार को मान्यता दी गई है, जबकि अनुच्छेद 7 में अमानवीय तथा क्रूर व्यवहार के निषेध का प्रावधान किया गया है।[7] कई विधि विशेषज्ञ असहनीय पीड़ा की स्थिति में गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार को इन प्रावधानों से जोड़कर देखते हैं। इसी प्रकार विश्व चिकित्सा संघ द्वारा जारी चिकित्सकीय नैतिकता संबंधी घोषणाओं में रोगी की गरिमा, स्वायत्तता तथा उपचार संबंधी सहमति को महत्वपूर्ण माना गया है। संगठन ने असाध्य रोगियों की पीड़ा कम करने तथा सम्मानपूर्ण देखभाल की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। इस प्रकार, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संबंधी दस्तावेज इच्छा मृत्यु को प्रत्यक्ष रूप से वैध अधिकार घोषित नहीं करते। किन्तु मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता तथा पीड़ा से मुक्ति आदि सिद्धांत इस विषय पर वैश्विक चर्चा का आधार प्रदान करते हैं।

5. अन्य देशों में इच्छा मृत्यु संबंधी कानून

नीदरलैंड ने वर्ष 2002 में "जीवन समाप्ति तथा चिकित्सकीय सहायता अधिनियम" लागू किया। इस कानून के अनुसार यदि कोई रोगी असहनीय पीड़ा में हो तथा उसके स्वस्थ होने की संभावना समाप्त हो चुकी हो, तो निर्धारित शर्तों के आधार पर चिकित्सक इच्छा मृत्यु की अनुमति दे सकता है।[8]

बेल्जियम ने भी वर्ष 2002 में इच्छा मृत्यु को वैधानिक मान्यता प्रदान की। वहाँ गंभीर तथा असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सकीय प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद इच्छा मृत्यु की अनुमति दी जा सकती है। बाद में इस कानून का विस्तार अल्पायु रोगियों तक भी किया गया।[9]

[6] संयुक्त राष्ट्र, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948, महासभा प्रस्ताव 217A, दिसंबर 1948, उपलब्ध है: https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rightsA दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[7] संयुक्त राष्ट्र, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966, महासभा संकल्प 2200, (XXI), दिसंबर 1966, उपलब्ध है: https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/international-covenant-civil-and-political-rights दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[8] "डच 'दया मृत्यु कानून' पारित, बीबीसी," 11 अप्रैल 2001, उपलब्ध है: http://news.bbc.co.uk/2/hi/europe/1269682.stm दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[9] बेल्जियम, वर्ष 2002 में इच्छा मृत्यु, उपलब्ध है: https://eol.law.dal.ca/wp-content/uploads/2015/06/Euthanasia-Act.pdf दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

कनाडा में वर्ष 2016 में "चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु संबंधी कानून" लागू किया गया।[10] इसके अंतर्गत असाध्य रोग से पीड़ित वयस्क व्यक्ति, जो असहनीय पीड़ा का सामना कर रहा हो, चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु की अनुमति प्राप्त कर सकता है।

स्विट्जरलैंड का कानून इच्छामृत्यु की अवधारणा को सामान्य रूप से मान्यता नहीं देता है। स्विस दंड संहिता के अनुच्छेद 114 के अनुसार, "पीड़ित की अनुरोध पर हत्या" को हत्या के अन्य मामलों की तुलना में कम गंभीर माना जाता है, लेकिन यह फिर भी एक अवैध अपराध है।[11] अर्थात, किसी व्यक्ति की इच्छा पर उसकी मृत्यु कर देना कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं है। वर्ष 1997 में स्विस संसद में इच्छामृत्यु को अपराध से मुक्त करने का प्रस्ताव रखा गया था। इस विषय की गंभीरता को देखते हुए संघीय सरकार ने एक कार्य समूह का गठन किया, जिसमें विधि विशेषज्ञ, चिकित्सक और नैतिकता विशेषज्ञ शामिल थे। इस समूह को यह अध्ययन करने का कार्य दिया गया कि क्या इच्छामृत्यु को वैध किया जाना चाहिए या नहीं। इस कार्य समूह ने अपनी रिपोर्ट में मुख्य रूप से यह सुझाव दिया कि इच्छामृत्यु को पूर्ण रूप से वैध नहीं किया जाना चाहिए और इसे अवैध ही रखा जाना चाहिए। हालांकि, समूह के अधिकांश सदस्यों ने यह भी प्रस्ताव दिया कि कुछ विशेष परिस्थितियों में इसे अपराध से मुक्त किया जा सकता है। इन विशेष परिस्थितियों में वह स्थिति शामिल थी जब कोई सक्षम, असाध्य रोग से पीड़ित और अंतिम अवस्था में पहुँचा हुआ रोगी, असहनीय और असाध्य पीड़ा से गुजर रहा हो और उसने बार–बार स्पष्ट रूप से इच्छामृत्यु की मांग की हो। ऐसे मामलों में, न्यायालय की संतुष्टि के आधार पर इच्छामृत्यु को अपराध से मुक्त करने का सुझाव दिया गया था। यह भी कहा गया कि यह नियम केवल चिकित्सकों तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि गैर–चिकित्सकीय व्यक्तियों द्वारा सहायता देने की स्थिति को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, क्योंकि अन्यथा कानूनी असमानता उत्पन्न हो सकती है। कुछ सदस्यों ने इस प्रस्ताव का विरोध भी किया। इसके बावजूद, स्विस संसद ने इस प्रस्ताव को कानून का रूप देने से इनकार कर दिया, और भविष्य में भी इसमें बदलाव की संभावना कम मानी जाती है। वर्तमान में यह मुद्दा स्विस राष्ट्रीय जैव–नैतिकता परामर्श आयोग में विचाराधीन है, लेकिन इसकी अंतिम दिशा अभी निश्चित नहीं है।[12]

कनाडा चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु अधिनियम, 2016, कनाडा में वर्ष 2016 में "चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु अधिनियम" लागू किया गया, जिसका उद्देश्य कुछ विशेष परिस्थितियों में गंभीर रूप से पीड़ित रोगियों को गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार प्रदान करना था।[13] यह अधिनियम कनाडा के संविधान में जीवन, स्वतंत्रता और व्यक्ति की सुरक्षा के अधिकारों के अनुरूप बनाया गया है। इस कानून के अनुसार, यदि कोई वयस्क व्यक्ति गंभीर और असाध्य बीमारी से पीड़ित है, जिसकी चिकित्सा स्थिति अपरिवर्तनीय है और जिसके कारण उसे असहनीय शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो रही है, तो वह चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु की मांग कर सकता है। इसके लिए रोगी का मानसिक रूप से सक्षम होना आवश्यक है और उसे स्वयं स्वेच्छा से यह निर्णय लेना होता है। अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि रोगी की मृत्यु की सहायता केवल योग्य चिकित्सक या नर्स प्रैक्टिशनर द्वारा ही की जा सकती है। पूरी प्रक्रिया में रोगी की स्पष्ट सहमति, लिखित अनुरोध और कई बार पुनः पुष्टि आवश्यक होती है, ताकि किसी प्रकार के दबाव या दुरुपयोग की संभावना न रहे। इसके अतिरिक्त, रोगी की स्थिति का मूल्यांकन कम से कम दो स्वतंत्र चिकित्सकों द्वारा किया जाता है, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि रोगी वास्तव में गंभीर और असाध्य स्थिति में है तथा उसकी पीड़ा असहनीय है।[14] यह व्यवस्था इस बात को सुनिश्चित करती है कि यह अधिकार केवल अत्यंत विशेष परिस्थितियों में ही लागू

[10] कनाडा सरकार, "चिकित्सा सहायता से मृत्युः कनाडा में कानून", उपलब्ध हैः https://www.canada.ca/en/health-canada/services/health-services-benefits/medical-assistance-dying/legislation-canada.html दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[11] स्विस दंड संहिता,1937।

[12] स्विट्जरलैंड का इच्छामृत्यु कानून, उपलब्ध हैः https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC1125125/ दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[13]कनाडा चिकित्सकीय सहायता से मृत्यु अधिनियम, 2016, उपलब्ध हैः https://www.justice.gc.ca/eng/rp-pr/other-autre/addend/index.html दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

[14] गवर्नमेंट ऑफ कनाडा, "मेडिकल अस्सिटेंट इन डाईंग ओवरव्यू", उपलब्ध हैः https://www.canada.ca/en/health-canada/services/health-services-benefits/medical-assistance-dying.html दिनांक 01 मई 2026 को अन्तिम बार देखा गया।

हो। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य रोगियों की गरिमा की रक्षा करना और उन्हें अनावश्यक पीड़ा से बचाना है। साथ ही इसमें नैतिक और कानूनी संतुलन बनाए रखने के लिए कठोर सुरक्षा उपाय भी शामिल किए गए हैं।
इन देशों के कानूनों में रोगी की स्वतंत्र इच्छा, चिकित्सकीय प्रमाण तथा विधिक नियंत्रण को विशेष महत्व दिया गया है, ताकि इच्छा मृत्यु के प्रावधान का दुरुपयोग न हो सके।

6. भारत के परिप्रेक्ष्य में संवैधानिक एवं विधिक प्रावधान (इच्छा मृत्यु के संदर्भ में)

1. संविधानिक प्रावधान

भारत में इच्छा मृत्यु से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण आधार भारतीय संविधान है। संविधान का अनुच्छेद इक्कीस प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने समय–समय पर इसकी व्याख्या करते हुए यह माना है कि इसमें केवल जीवित रहने का अधिकार ही नहीं, बल्कि गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार भी शामिल है। इसी विचार के आधार पर गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार पर भी चर्चा विकसित हुई। अनुच्छेद 21 के साथ अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) और अनुच्छेद 19 (स्वतंत्रता का अधिकार) भी व्यक्ति की स्वायत्तता और निर्णय लेने की स्वतंत्रता को मजबूत करते हैं।[15] इन प्रावधानों के आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति असाध्य स्थिति में है, तो उसकी इच्छा का सम्मान किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मामलों में यह स्पष्ट किया है कि संविधान जीवन की रक्षा करता है, परंतु जीवन को केवल शारीरिक अस्तित्व तक सीमित नहीं करता, बल्कि उसमें गरिमा और सम्मान भी शामिल है।

2. विधिक प्रावधान (कानूनी व्यवस्था के अंतर्गत)

भारत में इच्छा मृत्यु से संबंधित विधिक प्रावधान मुख्य रूप से भारतीय न्याय संहिता और न्यायिक निर्णयों पर आधारित हैं। भारतीय न्याय संहिता, 2023 के अनुसार किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करना सामान्यतः अपराध माना गया है। सक्रिय इच्छा मृत्यु (जिसमें सीधे मृत्यु दी जाती है) को हत्या या आपराधिक मानव वध की श्रेणी में रखा गया है। इसके लिए कठोर दंड का प्रावधान किया गया है। इसके विपरीत निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को न्यायालय ने सीमित शर्तों के साथ मान्यता दी है। इसमें रोगी को जीवित रखने वाले कृत्रिम साधनों को हटाया जाता है, लेकिन यह प्रक्रिया केवल उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय की अनुमति से ही की जा सकती है। इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण न्यायिक विकास अरुणा शानबाग मामले में हुआ, जहाँ निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को पहली बार सीमित रूप में स्वीकार किया गया। बाद में कॉमन कॉज मामले में "जीवित इच्छा–पत्र" को भी मान्यता दी गई, जिससे व्यक्ति अपनी भविष्य की चिकित्सा स्थिति के लिए पहले से निर्णय ले सकता है। चिकित्सकीय नैतिकता से जुड़े नियम भी महत्वपूर्ण हैं, जिनमें रोगी की सहमति और उसकी गरिमा का सम्मान आवश्यक माना गया है।

7. "हरिश राणा बनाम भारत संघ"[16] वाद

11 मार्च को, न्यायमूर्ति जेबी परदीवाला और न्यायमूर्ति केवी विश्वनाथन की पीठ ने हरीश राणा के लिए निष्क्रिय इच्छामृत्यु की याचिका को स्वीकार कर लिया। हरीश राणा 32 वर्षीय हैं और पिछले 13 वर्षों से स्थायी कोमा की स्थिति में था। न्यायमूर्ति परदीवाला ने मुख्य मत लिखा और न्यायमूर्ति विश्वनाथन ने सहमति वाला मत लिखा। यह पहला मामला था जहां सुप्रीम कोर्ट द्वारा **कॉमन कॉज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया**[17] मामले में निर्धारित निष्क्रिय इच्छामृत्यु दिशानिर्देशों को पूरी तरह से लागू किया गया। कॉमन कॉज मामले में, पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने माना था कि गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार का एक पहलू है।

[15] भारत का सविधान, 1950।
[16] विविध आवेदन संख्या 2238 वर्ष 2025
[17] (2018) 5 एससीसी 1।

राणा के चौथी मंजिल से गिरने के कारण वे क्वाड्रिप्लेजिया और पूर्ण विकलांगता से ग्रसित हो गए। उन्हें चिकित्सकीय सहायता प्राप्त पोषण और जलयोजन उपचार के तहत रखा गया। यह उनके भोजन और जलग्रहण का प्राथमिक माध्यम बन गया, जिसके लिए उन्हें परक्यूटेनियस एंडोस्कोपिक गैस्ट्रोस्टोमी ट्यूब का उपयोग करना पड़ता था। राणा की निष्क्रिय इच्छामृत्यु की याचिका पर सबसे पहले दिल्ली उच्च न्यायालय ने सुनवाई की। 2024 में, उच्च न्यायालय ने उनकी याचिका यह कहते हुए खारिज कर दी कि पोषण और जलयोजन उपचार बंद करने से उनकी भूख से मृत्यु हो जाएगी। चूंकि उन्हें मेडिकल वेंटिलेटर पर नहीं रखा गया था, इसलिए इसे निष्क्रिय इच्छामृत्यु नहीं माना जा सकता। अगस्त 2024 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वह प्रथम दृष्टया उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत है। लेकिन केंद्र सरकार को नोटिस जारी कर राणा को किसी ऐसे अस्पताल में स्थानांतरित करने की संभावना तलाशने को कहा, जहां उनकी जरूरतों का ध्यान रखा जा सके। क्योंकि उनके वृद्ध माता–पिता पर आर्थिक बोझ बहुत अधिक है। नवंबर 2024 में, तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश डी. वाई. चंद्रचूड़ के कार्यकाल के अंतिम दिन पीठ ने उत्तर प्रदेश सरकार को उनके चिकित्सा खर्चों को वहन करने के लिए सहायता प्रदान करने का सुझाव दिया। बाद में, अक्टूबर 2025 में राणा के माता–पिता द्वारा एक विविध आवेदन दायर किया गया। जिस पर न्यायमूर्ति परदीवाला और विश्वनाथन की पीठ ने सुनवाई की। कॉमन कॉज मामले में दिए गए दिशा–निर्देशों का पालन करते हुए , न्यायालय ने प्रारंभ में मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा एक प्राथमिक चिकित्सा बोर्ड के गठन का निर्देश दिया, और बाद में अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान (एआईआईएमएस) में एक द्वितीयक बोर्ड की स्थापना की गई। इन दोनों बोर्डों ने निष्कर्ष निकाला कि हरीश को 'अपरिवर्तनीय मस्तिष्क क्षति' हुई थी, जो स्थायी पीवीएस (शारीरिक रूप से बीमार व्यक्ति) के मानदंडों को पूरा करती थी, और यह कि सीएएनएच (सामान्य चिकित्सा देखभाल) केवल उसके जैविक अस्तित्व के लिए आवश्यक थी, लेकिन उसकी अंतर्निहित बीमारी में सुधार करने में असमर्थ थी। इन रिपोर्टों का अध्ययन करने के बाद, पीठ ने राणा की स्थिति को बेहद दयनीय बताया। दिसंबर में अपने संक्षिप्त विवरण में लिखा कि राणा का मामला कॉमन कॉज दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन के लिए अंतिम कसौटी है। इसमें दो प्रमुख प्रश्न उठाए – क्या पोषण और जलयोजन को जीवन रक्षक उपचार माना जा सकता है? दूसरा क्या न्यायालय रोगी के सर्वोत्तम हित में निर्णय दे सकता है?

जीवन रक्षक उपचार के रूप में जलयोजन

न्यायालय ने माना कि जलयोजन को "प्राथमिक उपचार" की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता और यह हर मायने में एक चिकित्सीय उपचार है। यह चम्मच से खिलाने जैसी विधियों से भिन्न है और इसके लिए तकनीकी रूप से संचालित चिकित्सीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। जलयोजन या ट्यूब लगाने के लिए आवधिक समीक्षा, चिकित्सीय मूल्यांकन और नैदानिक निर्णय की आवश्यकता होती है। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि पोषण और जलयोजन उन सभी नैतिक, कानूनी और नैदानिक सिद्धांतों के अधीन है जो जीवन रक्षक अन्य चिकित्सा हस्तक्षेपों की शुरुआत, निरंतरता, रोक या वापसी को नियंत्रित करते हैं। पोषण और जलयोजन को चिकित्सा उपचार के रूप में निर्धारित करने का महत्व यह है कि इससे डॉक्टरों को यह मूल्यांकन करने में मदद मिलेगी कि उपचार जारी रखना रोगी के सर्वोत्तम हित में है या नहीं। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि PEG (परक्यूटेनियस एंडोस्कोपिक गैस्ट्रोस्टोमी) ट्यूबों के माध्यम से प्रशासित चिकित्सकीय रूप से प्रशासित पोषण (CANH) चिकित्सा उपचार है, न कि केवल बुनियादी देखभाल ।

"मरीज के सर्वोत्तम हित में"

कॉमन कॉज मामले में न्यायालय ने यह माना कि उपचार रोकने या बंद करने से संबंधित कोई भी निर्णय रोगी के सर्वोत्तम हित के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए लिया जाना चाहिए, जो तब प्रासंगिक होता है जब रोगी अपना निर्णय स्वयं व्यक्त करने में असमर्थ हो। सर्वोत्तम हित का निर्धारण डॉक्टरों और न्यायालयों का दायित्व है। कॉमन कॉज मामले में पूर्व मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने निष्कर्ष निकाला कि रोगी का सर्वोत्तम हित राज्य के हित से भी ऊपर

है। राणा के मामले में, पीठ ने स्वीकार किया कि 'सर्वोत्तम हित' सिद्धांत का कोई एक निश्चित सूत्र नहीं है जो सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू हो। इसके लिए चिकित्सा और गैर–चिकित्सा दोनों कारकों का समग्र मूल्यांकन आवश्यक है, जिसमें 'रोगी की इच्छाएं, भावनाएं, मान्यताएं, मूल्य और कोई भी अन्य कारक शामिल हैं जो रोगी के निर्णय को प्रभावित कर सकते हैं, या जिन्हें रोगी स्वयं ध्यान में रखता यदि वह निर्णय लेने की क्षमता रखता।' राणा के मामले में, न्यायालय ने कहा कि मुद्दा यह नहीं था कि मरना उसके हित में था या नहीं, बल्कि यह था कि कृत्रिम रूप से उसके जीवन को लंबा खींचना उसके हित में था या नहीं। दुर्घटना के बाद से राणा को ट्रेकियोस्टोमी, मूत्र कैथेटर और पीईजी ट्यूब के माध्यम से सीएएनएच दिया जा रहा था। उन्हें दौरे पड़ने का भी इतिहास रहा, और चिकित्सा रिपोर्टों से पता चलता है कि उन्हें अपने परिवेश का कोई ज्ञान नहीं था और वे चेहरे के हाव–भाव से यह नहीं बता सकते थे कि उन्हें भूख लगी है या वे असहज महसूस कर रहे हैं। इसके अलावा, माध्यमिक बोर्ड ने उनके मस्तिष्क की क्षति को अपरिवर्तनीय पाया है। सीएएनएच उनके जीवित रहने के लिए आवश्यक था, लेकिन इससे उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा था।

न्यायालय ने उपचार के लाभों और उससे उत्पन्न होने वाले कष्टों (जिनमें शारीरिक पीड़ा, उपचार की जटिलताएँ, अपमान और मानसिक कष्ट शामिल थे) का संतुलित विश्लेषण किया। राणा के माता–पिता ने तर्क दिया कि उनके हित में बोलना उनका नैतिक दायित्व है। कॉमन कॉज दिशानिर्देशों के तहत प्रक्रिया शुरू करने का उनका निर्णय तब लिया गया जब यह स्पष्ट हो गया कि चिकित्सा उपचार जारी रखने से राणा को कोई सार्थक लाभ नहीं होता और केवल उसकी पीड़ा बढ़ती है, जिससे आवेदक का जीवन गरिमाहीन हो रहा है।

चिकित्सा प्रक्रिया में कोई अस्पष्टता नहीं है

प्राथमिक और माध्यमिक बोर्डों का मत था कि राणा को दिया गया उपचार लंबा, निरर्थक और ठीक होने की कोई उम्मीद नहीं वाला हो गया है। न्यायालय ने 'प्रतिस्थापित निर्णय मानक' लागू किया, जिसके अनुसार न्यायालय को रोगी की स्थिति में रहकर यह विचार करना होता है कि यदि रोगी में निर्णय लेने की क्षमता होती तो वह क्या चाहता। पीठ ने गौर किया कि राणा द्वारा चिकित्सा उपचार रोकने के संबंध में कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थी; जैसे कि कोई अग्रिम चिकित्सा निर्देश या लिविंग विल। प्रतिस्थापित निर्णय मानक के आधार पर पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि इन परिस्थितियों में उन्होंने CANH जारी रखने का विकल्प नहीं चुना होगा। कुछ गैर–चिकित्सा कारकों ने इस संबंध में पीठ को एक प्रासंगिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया; राणा ऊर्जावान थे और खेलकूद और जिमिंग जैसी शारीरिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। कॉमन कॉज मामले में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ की राय थी कि 'सर्वोत्तम हित' को 'जनहित' के रूप में प्रतिस्थापित निर्णय के मानक के साथ संतुलित किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, न्यायालय ने कहा कि प्राथमिक और माध्यमिक चिकित्सा बोर्डों दोनों ने कहा था कि CANH उपचार बंद करना रोगी के सर्वोत्तम हित में था। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि रोगी के कल्याण का निर्धारण करते समय न्यायालय हमेशा अंतिम निर्णायक नहीं होता है।

उपचार रोक देना कोई अचानक की गई कार्रवाई नहीं है।

न्यायालय ने उपशामक चिकित्सा और जीवन के अंतिम चरण की देखभाल के महत्व पर बल दिया। न्यायालय ने कहा कि उपचार बंद होने के बाद भी रोगी की देखभाल करना डॉक्टरों का दायित्व है। न्यायालय ने निर्देश दिया कि स्पष्ट रूप से तैयार और चिकित्सकीय देखरेख में उपशामक और जीवन के अंतिम चरण की देखभाल योजना के माध्यम से उपशामक चिकित्सा को चरणबद्ध तरीके से बंद या रोका जाना चाहिए। पीठ ने कहा कि गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार गुणवत्तापूर्ण उपशामक और जीवन के अंतिम चरण की देखभाल प्राप्त करने के अधिकार से अविभाज्य है। इसने अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान को राणा को उपशामक देखभाल में भर्ती करने का निर्देश दिया।

अपने फैसले के अंत में, न्यायमूर्ति परदीवाला ने लिखा कि यह निर्णय आत्मसमर्पण नहीं बल्कि करुणा और साहस का उदाहरण है। यह केवल तर्क और विवेक पर आधारित नहीं है, बल्कि प्रेम, हानि, चिकित्सा और दया के बीच स्थित

है। निर्णय के भावनात्मक महत्व को समझते हुए, न्यायमूर्ति परदीवाला ने राणा के माता–पिता को सीधे संबोधित करते हुए लिखा, आप अपने बेटे को नहीं छोड़ रहे हैं। आप उसे गरिमा के साथ विदा होने दे रहे हैं। यह उसके प्रति आपके निस्वार्थ प्रेम और समर्पण की गहराई को दर्शाता है।

8. भारत में इच्छा मृत्यु से संबंधित प्रमुख न्यायिक मामले

भारत में इच्छा मृत्यु का विषय लंबे समय तक विवाद और बहस का विषय बना रहा। समय के साथ सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मामलों में महत्वपूर्ण निर्णय दिए, जिनसे इच्छा मृत्यु संबंधी भारतीय कानून का विकास हुआ। इन मामलों ने जीवन के अधिकार, मानवीय गरिमा तथा गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार की नई व्याख्या प्रस्तुत की।

महाराष्ट्र राज्य बनाम मारुति श्रीपति दुबल [18] बॉम्बे उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि मरने का अधिकार अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) में निहित है और यह अंतिम अवस्था की बीमारी से पीड़ित या लगातार गंभीर दर्द में रहने वाले रोगियों को अपने जीवन का अंत करने की अनुमति देता है। इच्छा मृत्यु से संबंधित पहला महत्वपूर्ण मामला वर्ष 1994 का **"पी. रथीनम बनाम भारत संघ"**[19] था। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राप्त जीवन के अधिकार में मृत्यु का अधिकार भी शामिल हो सकता है। न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 309, जो आत्महत्या के प्रयास को अपराध मानती थी, को अनुचित बताया। इस निर्णय ने इच्छा मृत्यु और आत्मनिर्णय के अधिकार पर नई बहस प्रारंभ की। इसके बाद वर्ष 1996 में **"ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य"**[20] मामला सामने आया। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय को बदलते हुए कहा कि जीवन के अधिकार में मृत्यु का अधिकार शामिल नहीं है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 21 केवल गरिमापूर्ण जीवन की रक्षा करता है, न कि मृत्यु चुनने की स्वतंत्रता देता है। हालांकि न्यायालय ने यह भी माना कि प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया को सम्मानपूर्वक स्वीकार करना अलग विषय है। भारत में इच्छा मृत्यु से संबंधित सबसे चर्चित मामला **"अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ"**[21] था। अरुणा शानबाग एक नर्स थीं, जो वर्ष 1973 में हुए क्रूर हमले के बाद लगभग बयालीस वर्षों तक अचेत अवस्था में रहीं। वर्ष 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को सीमित रूप में मान्यता दी। न्यायालय ने कहा कि विशेष परिस्थितियों में कृत्रिम जीवन–रक्षक साधनों को हटाया जा सकता है, लेकिन इसके लिए उच्च न्यायालय की अनुमति आवश्यक होगी। यह निर्णय भारतीय विधिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ माना गया। इसके बाद वर्ष 2018 में **"कॉमन कॉज बनाम भारत संघ"**[22] मामला आया, जिसने इच्छा मृत्यु संबंधी कानून को नई दिशा दी। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में "गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार" को अनुच्छेद 21 का हिस्सा माना। न्यायालय ने "जीवित इच्छा–पत्र" को भी मान्यता प्रदान की। इसका अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति पहले से लिखित रूप में यह तय कर सकता है कि गंभीर और असाध्य स्थिति में उसे कृत्रिम जीवन–रक्षक साधनों पर जीवित रखा जाए या नहीं। इस निर्णय ने व्यक्ति की स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा को विशेष महत्व दिया। हाल के समय में हरिश राणा मामला इच्छा मृत्यु के क्षेत्र में एक नया और महत्वपूर्ण निर्णय बनकर सामने आया। इस मामले ने यह स्पष्ट किया कि न्यायालय विशेष परिस्थितियों में मानवीय गरिमा और पीड़ा से मुक्ति को ध्यान में रखते हुए निष्क्रिय इच्छा मृत्यु की अनुमति दे सकता है। इन सभी मामलों ने भारतीय न्यायपालिका की बदलती सोच को दर्शाया है। प्रारंभ में जहाँ न्यायालय ने मृत्यु के अधिकार को अस्वीकार किया, वहीं बाद में गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार को सीमित रूप में स्वीकार किया गया। वर्तमान में भारत में केवल निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को कानूनी मान्यता प्राप्त है, जबकि सक्रिय इच्छा मृत्यु अभी भी अवैध मानी जाती है।

[18] अपील (फौजदारी) 130, 1987।
[19] ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1844।
[20] ए.आई.आर 1996 पृष्ठ 946।
[21] (2011) 4 एससीसी 454।
[22] ए.आई.आर. 2018 सर्वोच्च न्यायालय 1665।

9. निष्कर्ष

इच्छा मृत्यु का विषय आधुनिक विधिक, नैतिक और सामाजिक विचार–विमर्श का अत्यंत संवेदनशील विषय है। यह केवल कानून का प्रश्न नहीं है, बल्कि मानवीय गरिमा, पीड़ा से मुक्ति, चिकित्सकीय नैतिकता और जीवन के अधिकार से जुड़ा हुआ गहरा मानवीय प्रश्न भी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन के अधिकार को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, परंतु समय के साथ सर्वोच्च न्यायालय ने इसकी व्याख्या को विस्तृत करते हुए "गरिमापूर्ण जीवन" के साथ "गरिमापूर्ण मृत्यु" के पहलू पर भी विचार किया है। विभिन्न न्यायिक निर्णयों ने यह स्पष्ट किया है कि जीवन का अधिकार केवल जीवित रहने तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्मान और गरिमा के साथ जीवन जीने की स्वतंत्रता भी इसमें शामिल है। इसी क्रम में यह प्रश्न उठता है कि जब कोई व्यक्ति असाध्य बीमारी, लंबे समय तक अचेत अवस्था या असहनीय पीड़ा से गुजर रहा हो, तो क्या उसे अनावश्यक चिकित्सकीय साधनों के माध्यम से केवल जीवित रखना उचित है या उसे गरिमा के साथ विदा होने का अवसर दिया जाना चाहिए। भारत में न्यायपालिका ने इस विषय पर संतुलित दृष्टिकोण अपनाया है। प्रारंभिक दौर में मृत्यु के अधिकार को मान्यता नहीं दी गई, परंतु बाद में निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को सीमित शर्तों के साथ स्वीकार किया गया। विशेष रूप से अरुणा शानबाग मामला तथा कॉमन कॉज बनाम भारत संघ के निर्णयों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन मामलों ने यह स्थापित किया कि असाध्य स्थिति में रोगी को अनावश्यक कष्ट से बचाना भी मानवीय दृष्टिकोण का हिस्सा है। हाल के वर्षों में हरिश राणा जैसे मामलों ने इस विषय को और अधिक व्यावहारिक रूप प्रदान किया है, जहाँ न्यायालय ने परिस्थितियों के आधार पर जीवन–रक्षक साधनों को हटाने की अनुमति दी। यह निर्णय दर्शाता है कि न्यायपालिका अब मानवीय संवेदना और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करने की दिशा में आगे बढ़ रही है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी कई देशों ने इच्छा मृत्यु को कठोर शर्तों के साथ मान्यता दी है, जबकि कई देश अब भी इसके विरोध में हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह विषय अभी भी वैश्विक स्तर पर पूर्ण सहमति से दूर है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इच्छा मृत्यु एक ऐसा विषय है जिसमें जीवन की पवित्रता और मानवीय गरिमा के बीच संतुलन आवश्यक है। इसका उद्देश्य किसी भी प्रकार से जीवन को समाप्त करना नहीं, बल्कि असहनीय पीड़ा में पड़े व्यक्ति को सम्मानपूर्वक मुक्ति प्रदान करना है। भविष्य में आवश्यकता इस बात की है कि स्पष्ट, संतुलित और मानवीय कानून बनाए जाएँ, जिससे न तो कानून का दुरुपयोग हो और न ही किसी व्यक्ति की गरिमा को ठेस पहुँचे।